वर्तमान नैतिक संकट

और

इस्लाम

डॉ. फ़ज़्लुर्रहमान फ़रीदी

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"ईश्वर दयावान कृपाशील के नाम से।"

वर्तमान नैतिक संकट और इस्लाम

वर्तमान समय की एक मौलिक समस्या वयक्तिक एवं सामूहिक नैतिक संकट है। आज नैतिकता का ठोस एवं सुदृढ़ आधार मौजूद नहीं है। आज के समाज में नैतिकता एक निरर्थक वस्तु समझ ली गई और भौतिकवाद इतना प्रभावी हो चुका है कि मानव में न नैतिक जीवन गुज़ारने की भावना पायी जाती है और न ऐसे प्रेरक तत्व ही मौजूद हैं, जो इन्सान को नैतिक मूल्यों की पैरवी पर तत्पर कर सकें। सामाजिक परिस्थितियाँ इतनी विकृत हो चुकी हैं कि ये नैतिक मूल्यों पर चलना कठिन बनाती हैं। आज का समाज इनके हनन को आसान बनाता है और इसके लिए अनुकूल वातावरण उपलब्ध करता है।

समाज-निर्माण से संबंध रखनेवाली हर जिद्दोजुहद की कामयाबी किसी न किसी तरह की नैतिकता पर निर्भर होती है। कम्युनिस्ट समाज यद्यपि नैतिकता एवं धर्म को रद्द करता है, लेकिन एक विशिष्ट नैतिकता को प्रसारित करना चाहता है। इस मक़सद के लिए वह भी ज़ोर-ज़बरदस्ती से काम लेता है और कभी सामाजिक संस्थाओं एवं संगठनों का इच्छानुकूल गठन करता है, ताकि उसके द्वारा निर्मित नैतिकता की बुनियादें मज़बूत हो जाएँ।

पूँजीवादी व्यवस्था के बारे में विभिन्न विद्वानों ने एक विशिष्ट प्रकार के नैतिक मूल्यों को पूँजीवाद के विकास का ज़िम्मेदार घोषित किया है। जैसे वित्तीय नीति, कर नीति और सम्पत्ति के सीमांकन की नीति। आप कितनी ही अच्छी योजनाएँ बना लीजिए, मगर वे सफल नहीं हो सकतीं, जब तक कि उसके पीछे अपेक्षित नैतिक मूल्य विद्यमान न हों।

यह समस्या उस समय और भी पेचीदा हो जाती है जबकि पूरे समाज का कल्याण अपेक्षित हो। जैसे अगर आर्थिक प्रगति के साथ-साथ यह भी अपेक्षित हो कि इस प्रगति के लाभ जन-साधारण तक पहुंचें, आर्थिक प्रगति किसी विशेष वर्ग तक सीमित न रह जाए बल्कि जन-साधारण तक इसकी पहुंच हो और आर्थिक न्याय का चलन हो। इस संबंध में विभिन्न नीतियाँ अपनायी जाती हैं[1] मगर ये न्याय हासिल करने में एक सीमित दूरी तक ही जा सकती हैं। इनकी सफलता व विफलता अर्थ-तंत्र के चलाने वाले हाथों की ईमानदारी एवं उत्तरदायित्व के प्रति उनकी संवेदनशीलता और त्याग भाव पर निर्भर है। इन जैसे नैतिक गुणों को पल्लवित किये बग़ैर आर्थिक प्रगति की उपादेयता जन साधारण तक नहीं पहुंच सकती ।

आज आर्थिक प्रगति एवं जीवन-स्तर की उच्चता जिन गुणों पर निर्भर है, उनमें सबसे महत्वपूर्ण धन लोलुपता एवं स्वार्थ है। इनमें और उन नैतिक गुणों में जो आम इन्सानियत को जिन्दगी की नेमतों से भर सकते हैं, विरोधाभास पाया जाता है। इसलिए इन दोनों प्रकार के गुणों के बीच संतुलन एवं सामंजस्य स्थापित करना ज़रूरी है। मगर अफ़सोस है कि वर्तमान भारतीय समाज में धन लोलुपता और उच्च जीवन-स्तर की चाहत प्रबल होती जा रही है और इसके मुक़ाबले में त्याग की भावना जैसे नैतिक गुण विलुप्त होते जा रहे हैं।

महिला उत्पीड़न

अर्थ-तंत्र के अलावा सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्रों की प्रगति भी नैतिक मूल्यों पर निर्भर है। उदाहरणत: मानव वेग पारस्परिक संबंधों की बुनियाद जब तक आपसी प्रेम एवं सहयोग पर आधारित न हो तो हर प्रगति प्रकोप बन जाती है और सुधार का हर क़दम उपद्रव का कारण बना जाता है। पारिवारिक जीवन सुधार के लिए जो क़दम भी महज़ कठोर क़ानून के रूप में उठाया जाता है,

1. (देखिए Religion and the Rise of Capitalism)

वह न्याय के बजाय स्वयं में ज़ुल्म का बहाना बन जाता है।

औरत सदियों से कमज़ोर रही है। उसे वे साधन भी उपलब्ध नहीं रहे जो पुरुषों को प्राप्त रहे हैं। इसलिए वह अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए सिर्फ़ हाथ-पैर मार रही है, लेकिन उन तक पहुंचना उसके लिए बहुत दुष्कर रहा।

स्त्री-पुरुष की समानता (Gender Equality) के तमाम दावों के बावजूद भारतीय महिला आज भी कमज़ोर और मज़लूम है। उसके अधिकारों की प्रदत्तता का कार्य उसी वक़्त परिणामजनक हो सकता है, जब एक ऐसा नैतिक वातावरण उत्पन्न किया जाए, जिसमें उसे पुरुषों का अधीन न समझा जाए, जो प्रेम एवं परस्पर सहयोग की भावना को बढ़ावा दे।

पारिवारिक जीवन की सुरक्षा के लिए ईसाई समाज में एक अर्से तक तलाक़ को लगभग असंभव बना दिया गया था। मगर इससे सामाजिक सुदृढ़ता तो क्या आती, ज़ुल्म और शोषण के विभिन्न रास्ते निकाल लिए गए। पति-पत्नी के स्वाभाविक संबंधों की जगह ग़लत और अनैतिक तरीक़े आम हो गए।

भारत में पति की आज़ादी पर रोक लगाने के लिए तलाक़ के बाद उम्र भर भरण-पोषण की ज़िम्मेदारी लागू कर दी गई। लेकिन आंकड़े बताते हैं कि तलाक़ के बाद भरण-पोषण हासिल करने के लिए कमज़ोर और असहाय औरत को अदालतों के इतने चक्कर काटने पड़ते हैं कि अंततः अधिकतर औरतें मायूस हो जाती हैं।

राजनीतिक जीवन में दलित वर्गों के लिए जो क़दम उठाए गए हैं, वे बहुआयामी हैं, लेकिन इसके बावजूद उनकी मज़लूमियत (उत्पीड़न) और दमन ख़त्म नहीं हुआ है। उनकी औरतों के साथ बलात्कार एवं अत्याचार की घटनाएं रोज़ाना अख़बारों में आती रहती हैं। उनकी बस्तियां आज भी उजाड़ी जाती हैं, उनके जान-माल तबाह किये जाते हैं। आज भी इन्हें समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता है और उन्हें व्यवहारतः आज भी समता का स्थान समाज में प्राप्त नहीं हो सका है। मगर विडम्बना यह है कि ग़ैर तो ग़ैर स्वयं दलित नेता उनकी पीठ पर

सवार होकर उनकी बदहाली का मज़ाक़ उड़ाते हैं, अपनी दुनिया सँवारने के लिए उन कमज़ोरों की बदहाली को राजनीतिक शक्ति का माध्यम बनाते हैं।

व्यापक होता नैतिक पतन

यह नैतिक पतन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर हावी है। इसका बिगाड़ इतना व्यापक एवं इसका अंधेरा इतना गहरा है कि जन-साधारण के अलावा विशिष्ट जन भी परेशान हैं। सामाजिक जीवन में चारित्रक आचरण का जो विकार उत्पन्न है उसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं। लेकिन कुछ महत्वपूर्ण नैतिक विकार ऐसे हैं, जिनका उल्लेख करना प्रासांगिक होगा।

सामाजिक विकार

सबसे अहम विकार हमारे समाज में मानव-जीवन और मान-सम्मान का हनन है, हिंसा और उपद्रव है। जिस किसी के पास शक्ति और संसाधन हैं, वह अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए हिंसा को क़ानून पर वरीयता देता है। पहले यह काम केवल वे लोग करते थे, जिनका पेशा अपराध और मादक-पदार्थ था और उनका समाज में कोई स्थान न था। मगर अब यह रुझान उन लोगों के अन्दर भी पैदा हो रहा है जो अपने को सुसभ्य और शिक्षित कहते हैं; यहां तक कि नाबालिग़ लड़के और लड़कियों में भी हिंसा एवं अपराध की प्रवृत्ति तेज़ी से फैले रही है। नेतागण और उनके सहयोगी भी दुस्साहस से हत्याएँ करते और कराते हैं, जिनका सुबूत चुनावी हिंसा है। अपराध और हिंसा को हमारे समाज में अब सम्मान मिलने लगा है। इसका एक रूप यह है कि विभिन्न राजनीतिक दल चुनावों के अवसरों पर अपराधियों और हत्यारों को न केवल टिकट देते हैं, बल्कि उन्हें मंत्रीपद पर आसीन भी कर दे देते हैं।

रिपोर्टों के अनुसार उत्तर प्रदेश के मंत्रिमंडल में कई लोग ऐसे हैं, जिन पर हत्या एवं दंगों के बहुत-से मुक़द्दमे चल रहे हैं। हत्या एवं दंगे अब धार्मिक फ़साद

के भी बहाने बन गए हैं। जैसे स्टेन्स और उसके दो अबोध बच्चों की हत्या, हाल में एक ईसाई पादरी की हत्या, साम्प्रदायिक दंगों के मौक़ों पर और बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद मुंबई और अन्य स्थानों के दंगे। ये घटनाएँ मानव-जीवन की अवमानना के ठोस सुबूत हैं।

वैवाहिक जीवन में हत्या की घटनाएँ अब आम होती जा रही हैं। इनमें से कुछ मीडिया की नज़र में आ जाने की वजह से सामने आ जाती हैं। मसलन अभी कुछ साल पहले एक राजनीतिक दल के युवा नेता सुशील शर्मा ने अपनी पत्नी नैना साहनी की हत्या की, और फिर उसकी लाश के टुकड़े करके तंदूर में फेंक दिया। इस जघन्य अपराध के लिए अदालत ने उसे फांसी की सज़ा सुनाई है। समाज में हिंसा एवं हत्या की शिकार अधिकतम मज़लूम औरतें हो रही हैं। कितनी ही दलित औरतें ऐसी हैं, जिनकी इज़्ज़त लुटने के बाद उनकी हत्या कर दी गई।

मानव-जीवन की अवमानना का सबसे संगीन पहलू यह है कि अब हत्या जैसा संगीन जुर्म अपने भौतिक एवं राजनीतिक हितों की पूर्ति का आम ज़रिया समझ लिया गया है। धन-सम्पत्ति आदि के लिए हत्याएं पहले भी होती थीं; किन्तु अब यह प्रवृत्ति इतनी तरक़्क़ी कर गई है कि विचारों के मतभेद भी इसी तरह हल किए जाते हैं। कुछ दिन पहले ख़बर आयी थी कि दिल्ली में दो युवा दोस्त किसी मुद्दे पर बहस कर रहे थे, यहां तक कि एक ने दूसरे की हत्या कर दी। ट्रेनों में सीट के झगड़े और सिनेमा के टिकट लेने पर झगड़े भी कभी-कभी हत्या का कारण बन जाते हैं।[1]

---

1. हिन्दुस्तान 27 जनवरी 2004 (दिल्ली) के अनुसार प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के भांजे महेंद्र कुमार के पुत्र मनीष तथा अन्य दो युवकों को 24/1/04 की शाम बिलासपुर से दिल्ली जा रही एक ट्रेन से कोसी के क़रीब चलती गाड़ी से कुछ लोगों ने किसी विवाद पर नीचे फेंक दिया।

   इस दुर्घटना से भी नैतिक संकट का अनुमान लगाया जा सकता है। —प्रकाशक

कन्या-भ्रूण हत्या

मानव-जीवन की अवमानना का एक अत्यंत घिनौना रूप नवजात कन्या शिशुओं की हत्या है। भारत में इस युग में भी कुछ राज्यों जैसे केरल, उड़ीसा, बिहार में यह रिवाज है कि माएँ ख़ुद दाइयों की मदद से अपनी नवजात बच्चियों की विभिन्न निर्मम तरीक़ों से जन्म के कुछ महीने बाद इस भय से हत्या कर देती हैं कि इनकी वजह से दहेज का इन्तिज़ाम करना पड़ेगा।

टाइम्स ऑफ इंडिया (22 सितम्बर 1999) में एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, जिसमें बताया गया है कि राजस्थान के एक गांव में 110 साल बाद पहली बार वहाँ की एक लड़की की शादी हुई। इसलिए कि बाडमेर ज़िले के इस देवार गांव में एक लंबे अर्से से लड़की के जन्म की रिपोर्ट नहीं मिली। इस स्थिति का दुखद कारण यह है कि मासूम बच्चियाँ गला घोंटकर या अफ़ीम खिलाकर मौत के घाट उतार दी जाती हैं। अख़बार के अनुसार आधुनिक तकनीक को लड़कियों की भ्रूण हत्या करने के लिए भी बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जाता है।

दहेज की वजह से नयी दुल्हनों की हत्या की ख़बरें अख़बारों में बराबर आती रहती हैं। दुख की बात यह है कि इन घटनाओं में अधिकतर शिक्षित लोग लिप्त पाए गए हैं।

सुरक्षाबलों की अमानवीयता

यह प्रविति सिर्फ़ जन-साधारण में नहीं पाई जाती, बल्कि प्रशासन के उन लोगों में भी बड़े पैमाने पर मौजूद है जो शांति स्थापना के ज़िम्मेदार हैं। यातनाएँ और हिरासत की मौतें अब रोज़ की घटनाएं बन गयी हैं। मानवाधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय सिम्पोज़ियम की प्रबंध समिति के अध्यक्ष जस्टिस वी.एस. मलमैथ ने अपने एक बयान में कहा था कि देशभर के तमाम पुलिस स्टेशनों में यातानाएँ देने की घटनाएँ हो रही हैं, यहाँ तक कि उन स्टेशनों में भी जिनकी इंचार्ज महिलाएँ हैं।

मानवाधिकार संगठन 'पिपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज़'

(PUCL) की रिपोर्टों के अनुसार सैनिक एवं अर्द्ध सैनिक बलों ने कश्मीर में निरपराध लोगों की हत्याएँ और औरतों की बेइज़्ज़ती को अपना धंधा बना लिया है। कश्मीर की अदालतों में ऐसे सैकड़ों मुक़द्दमे दर्ज हैं, जिनमें पुलिस और सेना के जवान आरोपी हैं। यह व्यवहार उन लोगों के साथ हो रहा है जो इस देश के नागरिक हैं और उस क्षेत्र में हो रहा है जिसे हम देश का अटूट अंग कहते हैं।

उत्तराखंड आंदोलन के दौरान मुज़फ़्फ़रनगर और अन्य क्षेत्रों में पुलिसकर्मियों ने बड़े पैमाने पर महिलाओं को अपमानित किया और शांतिप्रिय लोगों में से कितने ही लोगों को गोलियों का निशाना बनाया। कुछ महीने पहले आंध्र प्रदेश में पुलिस के उत्पीड़न से तंग आकर बहुत-से लोगों ने आत्महत्या कर ली। मुंबई के 1993 के दंगों में मासूम लोगों के घरों को जलाया गया और कितने ही लोगों को गोलियों से भून दिया गया। बिहार की जेल में पुलिस ने 22 क़ैदियों की आंखें फोड़ दी थीं। यह सब शांति एवं व्यवस्था के नाम पर हो रहा है। इनका शर्मनाक पहलू यह है कि भय और आतंक फैलाने के लिए औरतों की इज़्ज़त को ख़ास निशाना बनाया जाता है। यह उस देश में हो रहा है, जहाँ लोकतंत्र स्थापित है, जहां मानवाधिकार के विभिन्न संगठन सक्रिय हैं।

हिंसा के इस आम होने का एक कारण यह है कि इन अपराधों में संलिप्त लोगों को यह यक़ीन है कि क़ानून की मशीनरी इतनी नाकारा है कि उनका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। क़ानून की पकड़ अगर कहीं सख़्त भी होती है तो वे रिश्वत या राजनीतिक दबाव के बलबूते पर इससे बच जाते हैं। दूसरा कारण, उनका यह विश्वास है कि कोई भी लक्ष्य बाहुबल से हासिल किया जा सकता है। इस वस्तुस्थिति की गंभीरता का अंदाज़ा इससे किया जा सकता है कि आम नागरिक भी क़ानून से मदद लेने के बजाए बाहुबल रखनेवालों से मदद लेना चाहता है। इसलिए वह दैनिक जीवन की आम सुविधाओं की प्राप्ति अब क़ानून की मदद से कठिन होती जा रही है। कुछ बड़े शहरों के बारे में यह बात मशहूर है कि छोटे दुकानदार शहर के दादा लोगों को 'टैक्स' देते हैं, ताकि वे ख़ैरियत से अपना कारोबार चला सकें।

भ्रष्टाचार में वृद्धि

इस नैतिक संकट का दूसरा रूप यह है कि जिन नैतिक बुराइयों को व्यक्तिगत जीवन में लोग बुरा समझते हैं, उन्हें सामूहिक मामलों में अपनाने में संकोच नहीं करते, बल्कि इन बुराइयों को अब ऐब भी नहीं समझा जाता। मसलन बिजली की चोरी अब शहरों में आम है। टैक्स की चोरी के लिए बेशुमार बहाने प्रचलित हो गए हैं। सरकार की विभिन्न योजनाओं के लिए जो रक़में मंज़ूर की जाती हैं, उनका बड़ा भाग नौकरशाही की जेबों में चला जाता है।

पूर्व प्रधानमंत्री दिवंगत राजीव गांधी ने अपने एक बयान में कहा था कि सरकार अगर एक रुपया मंज़ूर करती है तो 15 पैसे ही जनता तक पहुँते हैं। देश की सेवा के दावेदार राजनेता तो देश के धन पर अपना अधिकार समझते हैं।

जहाँ तक आम नैतिक मूल्यों का ताल्लुक़ है, उनका हाल और भी बुरा है। मामलात में धोखा और ख़यानत, खाद्य पदार्थों में मिलावट, कम नापना और तौलना, उत्तरदायित्व के एहसास और कर्तव्य पालन से बचना, झूठ, फ़रेब वर्तमान भारतीय समाज में बुरी तरह प्रचलन में हैं। ये तमाम बुराइयाँ मानव समाज में फ़साद पैदा करती हैं। इनसे अवाम और विशिष्ट जन सभी परेशान हैं।

क़ानून का उल्लंघन

इस नैतिक संकट ने ऐसा माहौल उत्पन्न कर दिया है कि जिसमें नैतिक गुणों को अपनाना बहुत मुश्किल हो गया है। ईमानदारी अपनाना कठिन हो गया है और बेईमानी आसान व परिणामजनक। क़ानून का पालन सुरक्षा प्रदान नहीं करता, बल्कि उसके उल्लंघन में ख़ैरियत है। शांतिप्रिय नागरिक महत्वहीन है और बाहुबल एवं आपराधिक प्रवृत्ति का व्यक्ति सम्मानीय। अगर आप धोखाधड़ी करने में माहिर हैं तो दौलत और सत्ता आपके पैर चूमेंगी। लेकिन अगर आप सीधे और साफ़ तरीक़ों से व्यापार करना चाहते हैं तो पूरी ज़िन्दगी अभावग्रस्त रहेंगे।

नैतिक बिगाड़ का इलाज

इस नैतिक बिगाड़ से प्रत्येक निष्ठावान भारतीय परेशान है। इसके प्रभावी इलाज के विभिन्न तरीक़े बताये जाते हैं, जिनमें सबसे ज़्यादा मशहूर दो तरीक़े हैं– एक यह कि मानव स्वभाव की दृष्टि से लालची और स्वार्थी है। उसकी तबाहकारी से बचने के लिए क़ानून का सहारा लेना चाहिए और ऐसा हल अपनाना चाहिए जिसके डर से वह बिगाड़ से बचा रहे। लेकिन इस तरीक़े की सबसे बड़ी ख़ामी यह है कि ख़ुद क़ानून लागू करनेवाले भी वहीं इन्सान होते हैं जिन की सोच अगर ख़राब हो तो उनकी भी ख़राब होगी जिन पर वह क़ानून लागू किया जाता है। इसकी दूसरी ख़ामी यह है कि बहुत-से नैतिक दोषों का इलाज उसी वक़्त और उसी स्थिति में संभव है, जबकि दिल व दिमाग़ का सुधार किया जा सके।

दूसरा प्रचलित समाधान है धर्म और धर्म की नैतिक शिक्षाएँ। लेकिन अधिकतर धर्म, आध्यात्मिकता और सामूहिक व व्यक्तिगत नैतिकता को एक-दूसरे से बिल्कुल अलग रखते हैं। कुछ धर्म ऐसे हैं, जिनमें आध्यात्मिकता एवं आत्मिक शुद्धि का एकमात्र रास्ता संन्यास है। जितना अधिक आध्यात्मिक चरणों को आप तय करते जाएँगे, उतना अधिक आप जन-साधारण और ज़िन्दगी के मामलों से अलग होते जाएँगे। इनमें से कुछ ऐसे हैं जो नैतिकता को सीमित अर्थों में लेते हैं। जैसे ईसाइयत के निकट दया, सहिष्णुता व स्नेह ही मूलत: नैतिक मूल्य है। सामाजिक नैतिकता का इसकी शिक्षाओं में कोई स्थान नहीं है। इसलिए वह सामाजिक जीवन के बारे में कोई निर्देश नहीं देता। अहिंसा की शिक्षा देनेवाले धर्म जैसे बौद्धमत और जैनमत भी सामाजिक नैतिकता को आध्यात्मिक जीवन से पृथक रखते हैं। इसका कारण यह है कि इनके यहाँ भी आध्यात्मिक पराकाष्ठा सांसारिक जीवन का त्याग है।

नैतिक बिगाड़ के इस सर्वांगीण संकट में आज प्रत्येक नागरिक जो परम्परागत विद्वेष तथा अज्ञानता के दुराग्रह में लिप्त नहीं है, एक ऐसी वैचारिक एवं व्यावहारिक व्यवस्था की तलाश में है, जो इसका समाधान कर सके और

संसारवाद एवं स्वार्थवाद की मानसिकता पर क़ाबू पाने में इन्सान की मदद क सके। सत्य एवं न्याय के केवल भ्रामक शब्द और नारे ही प्रदान न करे, बल्कि इस सिलसिले में व्यापक मार्गदर्शन भी दे। वह धर्म एवं आध्यात्मिकता क विचित्र कर्मकांडों एवं विचारों का संग्रह न माने, बल्कि उन्हें मानव वैयक्तिक एं सामाजिक जीवन के सुधार का माध्यम बनाये। नैतिक मूल्यों को मात्र व्यक्तिगत एवं निजी (प्राइवेट) जीवन तक सीमित न करे, बल्कि उन्हें समाज-निर्माण क आधार बनाये।

इस्लाम की शिक्षाएँ

इस्लाम एक ऐसी ही वैचारिक एवं व्यावहारिक व्यवस्था है। वह विशुद्ध आध्यात्मिक जीवन, यहाँ तक कि इबादतों (पूजा-पाठ) को भी नैतिकता से जोड़ती है। बल्कि ज़्यादा सही बात यह है कि इसके निकट ईशप्रसन्नता का मार्ग भी नैतिक मूल्यों की निष्ठापूर्ण पैरवी से होकर गुज़रता है। वह चरित्र एवं आचरण को मोमिन की ज़िन्दगी में केन्द्रीय हैसियत देती है। वह संसार-त्याग के बजाए सामाजिक जीवन के निर्माण और सुधार को सत्य-धर्म (इस्लाम) का उद्देश्य घोषित करती है। उसने ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) के सद्गुण जिस तरह बयान किये हैं, वे बहुत महत्वपूर्ण हैं। क़ुरआन में है –

> "बेशक तुम नैतिकता के उच्च स्तर पर हो।" (क़ुरआन, 68/4)

एक दूसरी जगह कहा गया है –

> "ऐ पैग़म्बर! यह ख़ुदा की बड़ी रहमत है कि तुम उनके लिए बहुत नर्म मिज़ाज हो। अगर कहीं तुम सख़्त मिज़ाज और संगदिल होते तो ये सब तुम्हारे आसपास से छंट जाते। अत: उन्हें क्षमा कर दो और उनके हक़ में क्षमा की दुआ करो और दीन के काम में उनसे राय-मशविरा करो। और जब अज़्म (दृढ़ संकल्प) कर लो तो ख़ुदा पर भरोसा रखो। ख़ुदा को वे लोग पसंद हैं, जो उसके भरोसे पर काम करते हैं।"
>
> (क़ुरआन, 3/159)

इस आयत में सामाजिक नैतिकता को हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) की शदूतत्वर (पैग़म्बराना) हैसियत के साथ किस तरह जोड़ा गया है, यह विशेष ध्यान देने योग्य है। एक अन्य जगह हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) के नैतिक गुणों को इस तरह बयान किया गया है–

> "तुम लोगों के पास एक रसूल आया है जो ख़ुद तुम ही में से है। तुम्हारा मुश्किल में पड़ना उसके लिए असह्य है, वह तुम्हारे कल्याण का लालसी है। वह ईमान लानेवालों के लिए करुणामय और दयाशील है।" (क़ुरआन, 9/128)

सामाजिक नैतिकता

सामाजिक नैतिकता को विभिन्न रूपों में धार्मिक जीवन की पहचान एवं इबादत का एक मक़सद बताया गया है। इसे मोमिनों की विशिष्टता बताकर क़ुरआन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि ख़ुदा ने सत्य-धर्म (इस्लाम) को अवतरित किया है, ताकि इसकी शिक्षाओं की पैरवी करके एक ओर इबादत का हक़ अदा किया जा सके और दूसरी ओर इन्सान के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को सँवारा जा सके। कुछ जगहों पर तो इन्सानों के बीच सत्य-न्याय की स्थापना और सद्व्यवहार को इस धर्म को अवतरित करने का उद्देश्य घोषित किया गया है।

क़ुरआन अवतरण के प्रारंभिक काल में हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) को हुक्म दिया कि अपने रब की शुक्रगुज़ारी (कृतज्ञता) का हक़ अदा करो। क़ुरआन कहता है–

> "अनाथ (यतीम) पर सख़्ती न करो और साइल (माँगने वाले) को न झिड़को।" (क़ुरआन, 93/9)

ईशदूतत्व के मिशन की पूर्ति के लिए जो हुक्म दिया गया है, उसमें शुद्ध ईशपरायणतापूर्ण सामाजिक नैतिकता का सामंजस्य इस तरह किया गया कि इससे बेहतर तरीक़ा संभव न था। क़ुरआन में है –

"ऐ ओढ़-लपेट कर लेटनेवाले उठो और ख़बरदार करो। अपने रब की बढ़ाई का एलान करो और अपने कपड़े साफ़ रखो। गन्दगी से दूर रहो और एहसान न करो ज़्यादा हासिल करने के लिए।" (क़ुरआन, 74/1-6)

गन्दगी से आशय यद्यपि शिर्क व नास्तिकता की गन्दगी है, लेकिन इससे बाह्य सफ़ाई-सुथराई भी आशय है। एहसान जताने से भी मना किया गया है, इसलिए कि यह एक ऐब है। नैतिक पावनता और नैतिक अशुद्धता को ईशदूत (पैग़म्बर) के अस्ल मिशन से इस तरह जोड़ा गया है कि मानो वे एक-दूसरे के अटूट अंग हैं।

सत्य-धर्म का उद्देश्य न्याय स्थापना बताया गया है। कहा गया है कि आध्यात्मिकता संसार-त्याग का नाम नहीं है; बल्कि यह है कि ईश-प्रसन्नता के लिए न्याय-स्थापना की अनथक कोशिश की जाए–

"हमने रसूलों को साफ़-साफ़ निशानियों के साथ भेजा और उनके साथ किताब और मीज़ान (तुला) नाज़िल किया ताकि लोग इन्साफ़ पर क़ायम रहें।" (क़ुरआन, 57/25)

एक सारगर्भित आयत में मात्र न्याय ही नहीं, बल्कि अन्य नैतिक गुणों का भी हुक्म दिया गया है–

"और ख़ुदा न्याय एवं सदाचार का आदेश देता है और बदी (दुष्कर्म), बेहयाई व ज़ुल्म से मना करता है। वह नसीहत करता है, ताकि तुम सबक़ लो।" (क़ुरआन, 16/90)

एक अन्य आयत में ईशपरायणता और न्याय का प्रत्यक्ष रूप से रिश्ता जोड़ा गया है–

"किसी गिरोह की दुश्मनी तुम्हें इतना उत्तेजित न कर दे कि

न्याय से फिर जाओ। न्याय से काम लो, यह ईशपरायणता से ज़्यादा मुनासिबत रखता है।" (क़ुरआन, 5/2)

मोमिनों के गुण बयान करते वक़्त ख़ुदा ने क़ुरआन में कई जगहों पर सामाजिक गुणों को नमाज़ और रब की बन्दगी के साथ बयान फ़रमाया है–

"वे लोग अपनी अमानतों और अहद व पैमान (वचनबद्धता) का लिहाज़ रखते हैं।" (क़ुरआन, 23/8)

एक अन्य जगह यह कहा गया है कि मोमिन तो वे हैं जिनके धन में असहाय एवं वंचित लोगों का हक़ होता है।

(क़ुरआन, 51/19)

एक स्थान पर विस्तारपूर्वक ख़ुदा ने नेक बन्दों के सद्गुण बयान किये –

"जो ख़र्च करते हैं तो न फ़िज़ूलख़र्ची करते हैं न कंजूसी। बल्कि उनका ख़र्च दो इंतिहाओं के बीच इन्साफ़ पर क़ायम रहता है। जो ख़ुदा के सिवा किसी और माबूद (पूज्य) को नहीं पुकारते। ख़ुदा की हराम की हुई किसी जान को नाहक़ हलाक नहीं करते, और न ज़िना (व्यभिचार) करते हैं। यह काम जो करेगा वह अपने गुनाहों का बदला पाएगा... और जो लोग झूठ के गवाह नहीं बनते और किसी निकृष्ट चीज़ पर से उनका गुज़र हो तो शरीफ़ आदमियों की तरह उस पर गुज़र जाते हैं।" (क़ुरआन, 25/67-72)

सामाजिक नैतिकता को धर्मपरायण जीवन का अभीष्ट गुण ठहरा देने के बाद हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) के बहुत-से कथन हैं। आप (सल्ल.) ने इर्शाद फ़रमाया–

'विधवा और मुहताज के लिए दौड़-धूप करनेवाला व्यक्ति

उस व्यक्ति की तरह है जो ख़ुदा की राह में जिहाद करता है। उल्लेखकर्ता कहते हैं कि मुझे यह ख्याल होता है कि नबी (सल्ल.) ने यह भी फ़रमाया था कि वह इस तरह है, जो रात को नमाज़ में खड़ा रहे और ढीला न हो, और वह उस शख़्स की तरह है, जो दिन के रोज़े रखे और कभी न छोड़े।''

(हदीस : बुख़ारी)

इस्लाम ने इस तरह धर्मपरायणता को सामाजिक एवं समष्टीय नैतिकता से अन्तरंग किया है। अत: तक़वा (संयम और इन्द्रियनिग्रह) और ख़ुदा का ख़ौफ़, जन्नत की कामना, आख़िरत के अज़ाब से बचने की अभिलाषा, ये सब इन्सान को दुनिया के मोहपाश से दूर रखती हैं। इन शिक्षाओं की ख़ूबी यह है कि ये सादा हैं, पेचीदा नहीं हैं। ये मानव स्वभाव की कमज़ोरियों का लिहाज़ करती हैं। उसे फ़रिश्ता नहीं बनाना चाहतीं, बल्कि उससे यथा सामर्थ्य इनकी पैरवी चाहती हैं। नैतिक बिगाड़ के इस दौर में ऐसी ही वैचारिक एवं व्यावहारिक व्यवस्था की ज़रूरत है। यह वह अमृत है, जिसके स्रोत को विद्वेष एवं दुराग्रह के अंधेरे ने छुपा रखा है।

(साभार मासिक कान्ति, दिस. 2003)